52

अग्रवाल जाति

संक्षिप्त इतिहास

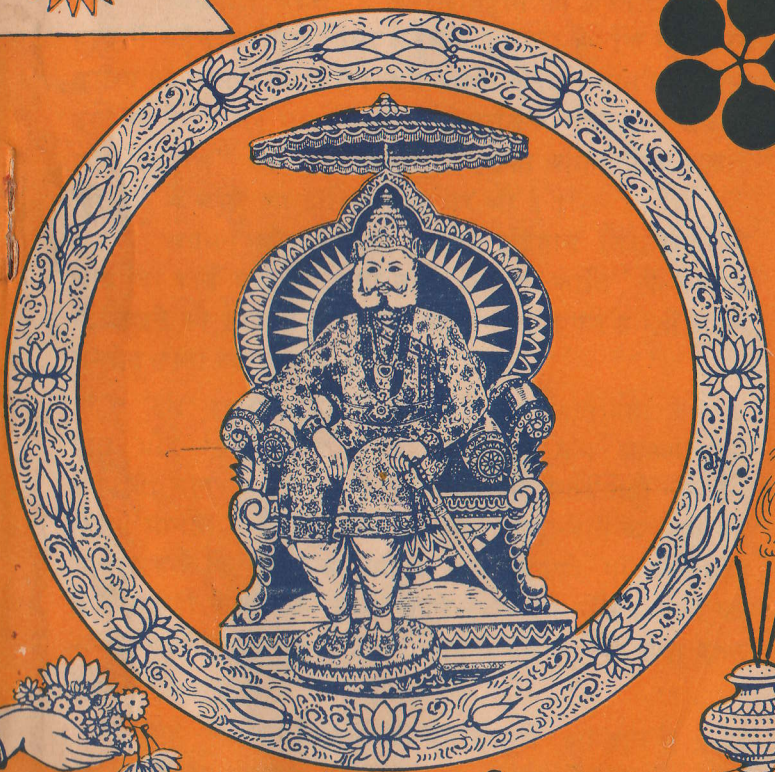

लेखक - मुरारीलाल अग्रवाल

प्रत्येक घर में रखने योग्य उत्तम सामाजिक लघु ग्रंथ

आत्म निवेदन

"अग्रवाल जाति" संक्षिप्त इतिहास को अपने बन्धुओं के में पहुँचाकर मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है कि मैंने अपने य का पालन किया है। इसे अपना कर्तव्य मानने की बात ाए है कि अ० भा० अग्रवाल सम्मेलन ने "अग्रसेन, अग्रोहा अग्रवाल" का नारा दिया है। इसका अधिकाधिक प्रचार श में करने का दायित्व मुझ पर भी है।

"अग्रसेन और अग्रोहा" संक्षिप्त इतिहास लिख चुकने के जो कार्य मुझे शेष लगा वह "अग्रवाल जाति" के सम्बन्ध खने की आवश्यकता थी। यह सेवा-पूर्ति करके मुझे आत्म ष होना स्वाभाविक है।

इस लघु पुस्तिका के लेखन के साथ जातीयता के पक्ष- और किसी अन्य जाति का महत्व कम आंकने जैसी त भावना मेरे मन और विचारों में कतई नहीं रही है। मानता हूँ कि आत्मोन्नति तथा राष्ट्रोन्नति के लिए यह यक है कि मानव वर्ग पहिले अपने आपको पहिचाने और पूर्वजों के गौरव-जल से अपने हृदय को सींचे। तभी वह देशभक्त हो सकता है और सच्ची समाज सेवा तथा राष्ट्र र सकता है।

यह पुस्तिका लिखने की प्रेरणा मुझे इस बात से प्राप्त क आज अग्रवाल जाति के बारे में युवाओं को इतना तक हीं है कि अग्रवालों के पूर्वज कौन थे, कहाँ रहते थे और ग्रवाल क्यों कहलाते हैं, इस जाति का अतीत क्या था

और वर्तमान में इस जाति के बारे में अन्य लोग क्या सोचते हैं। दुख उस समय अधिक होता है जबकि गैर अग्रवाल जाति के व्यक्ति यह बताते हैं कि दस्सा--बीसा अग्रवालों का क्या भेद है और महाराज अग्रसेन की कितनी रानियाँ थीं आदि २।

इस लघु पुस्तिका में अग्रवाल जाति के सम्पूर्ण इतिहास और गौरव को इस प्रकार संवारकर रखा गया है कि प्रत्येक युवा और बुजुर्ग को पूरी जानकारी हो सके। जातीय अच्छी परम्पराओं को ऐतिहासिक प्रमाणों के परिपेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है। मेरा विश्वास है कि "महाराज अग्रसेन और अग्रोहा" तथा "अग्रवाल जाति" इन दो पुस्तकों में अग्रसेन, अग्रोहा और अग्रवाल की पूरी जानकारी जातीय बन्धुओं तथा इतिहास प्रेमी गैर अग्रवाल बन्धुओं को हो सकेगी। यह प्रयास किया गया है कि पुस्तक का आकार बहुत बड़ा न होते हुए भी "गागर में सागर" भरकर पाठकों की सेवा पूर्ति हो सके।

इन पुस्तकों के लेखन-कार्य के प्रति न्याय तब होगा जबकि इसे साहित्य की भाँति पढ़ा जाय। किसी भी जाति के जीवित रहने के लिए साहित्य की बहुत आवश्यकता होती है। जाति का महत्व राष्ट्र की इकाई के रूप में होता है और सामाजिक कार्य, राष्ट्रीय कार्य का उसी प्रकार लघु रूप है जिस प्रकार देश के बाद प्रदेश का स्थान होता है। जाति का अर्थ संकीर्णता का भाव नहीं होना चाहिये।

अपने उन सभी विद्वान लेखकों तथा इतिहासकार बन्धुओं के प्रति आदरभाव व्यक्त करना अपना कर्तव्य मानता हूँ जिन्होंने अग्रवाल जाति का इतिहास प्रस्तुत कर सामाजिक सेवा-कार्य की शृंखला को आगे बढ़ाया है और इतिहास के

कोष की वृद्धि की है। अपने विद्वान् इतिहासकार श्री निरंजन लालजी गौतम के प्रति मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने द्वितीय संस्करण के प्रकाशन में उपयोगी सुझाव देने की कृपा की है।

अपने सभी बन्धुओं और सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करना अपना कर्तव्य मानता हूँ जिन्होंने प्रथम संस्करण स्नेह भाव से अपनाया और प्रकाशन का आदर किया। श्री चिरंजीलालजी पोद्दार (भरतपुर), श्री वैद्य हरीरामजी गुप्ता (नारनौल), श्रीमती स्वराज्यमणि अग्रवाल (जबलपुर), श्री निरंजनलाल गौतम (दिल्ली), श्री रामनारायण अग्रवाल (मथुरा) का मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने मेरे प्रयास को सराहा है। द्वितीय संस्करण समाज के हाथों में सौंपते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है।

छत्ता बाजार
मथुरा (उ. प्र.)
फोन : ५६५

मुरारीलाल अग्रवाल
मंत्री (प्रचार विभाग)
अ० भा० अग्रवाल सम्मेलन

जातियों की उत्पत्ति

सृष्टि के प्रारम्भ में तो मानव मात्र का केवल एक वर्ग विशेष था। वर्तमान जातियां न थीं अपितु जिसे ब्राह्मण कहा जाता था उसका अर्थ विद्वान था, किसी जाति का बोधक न था। ऋग्वेद संसार के पुस्तकालय में सबसे प्राचीन ग्रन्थ है और उसकी १० हजार ऋचाओं में से किसी से भी जातीय शब्द का बोध नहीं होता और इसके विपरीत उत्तर काल की कोई ऐसी पुस्तक नहीं जिसमें जातिभेद का वर्णन न हो। हां, वैदिक काल में वर्ण शब्द का प्रयोग होता था और उन वर्णों का रूप आज जातियों के रूप में विद्यमान है। ऋग्वेद में वर्ण शब्द का प्रयोग उस समय के समाज में विद्यमान मनुष्यों के दो भेदों आर्य और अनार्य के लिए हुआ है ऋग्वेद ३/३८/४)। यदि कहीं क्षत्रिय, ब्राह्मण, विशः और शूद्र का प्रयोग हुआ है तो उसका तात्पर्य केवल मनुष्य विशेष गुणों से है, जैसे ब्राह्मण शब्द किसी जाति का बोधक न होकर केवल मननशील विद्वानों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार क्षत्रिय शब्द से तात्पर्य 'बलवान' और 'रक्षक' से है (ऋग्वेद ६४/२ तथा ७ ८६/१) और विप्र शब्द का प्रयोग बुद्धिमान के लिए हुआ है जिसका प्रयोग ब्राह्मण के लिए किया जाता है (ऋग्वेद ८/११/६)।

मेरे उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यही है कि आज से लगभग ६००० वर्ष पूर्व समाज में जातियों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। सभी लोग उस समय मिलकर रहते थे और ऋग्वेद

काल के अन्त तक भारत वर्ष में यही क्रम चलता रहा। (पी० एन० बोस कृत हिन्दू सिविलाइजेशन अण्डर ब्रिटिश रूल भाग—२)

चार वर्ण

किन्तु आगे चलकर जातीयता का बीजारोपण उस समय हुआ जब कि मानव समाज में पहली बार ब्राह्मण वर्ग एक पृथक समूह रूप में प्रकट हुआ। प्रारम्भ में केवल ब्राह्मण ही थे इसका प्रमाण बाल्मीकि रामायण (उत्तरकाण्ड अध्याय ७४) में दिया है कि सतयुग में केवल ब्राह्मण ही तपस्या करते थे और क्षत्रियों की उत्पत्ति त्रेता युग में हुई तथा द्वापर में अन्य जातियां बनीं। इस उल्लेख का तात्पर्य भी यही है कि धर्माध्यक्ष रूप में प्रारम्भ में केवल ब्राह्मण समाज था किन्तु जब शत्रुओं से रक्षा हेतु बलवानों की आवश्यकता हुई तो क्षत्रियों की उत्पत्ति अनिवार्य हो गई। जब इन दोनों वर्णों के भरण पोषण के लिए व्यक्तियों की आवश्यकता हुई तो उनका विशः वर्ण बन गया और इन तीनों वर्णों का सेवा कार्य शूद्रों को सोंपा गया (आर० सी० दत्त कृत हिस्ट्री आफ सिविलाइजेशन इन एंशियेन्ट इण्डिया भाग १ पृष्ठ संख्या १५४) हमारे इस कथन की पुष्टि में वृहदारण्यक का मन्त्र १/४/११ उल्लेखनीय है जहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सृष्टि के प्रारम्भ में एक मात्र ब्राह्मण वर्ण था और जब यह जाति अकेले न चल सकी तो उसकी रक्षा के लिए क्षत्रियों की सृष्टि हुई।

गुण कर्म से

उपर्युक्त उदाहरणों से यह भी प्रकट होता है कि वर्णों को उत्पत्ति कर्म से हुई थी। जन्म से न कोई ब्राह्मण था न कोई

क्षत्रिय, न विशः न शूद्र। (यजुर्वेद २३/२, महाभारत शान्तिपर्व १८६/२७) वर्ण का निर्णय गुण, कर्म और स्वभाव से होता था (महाभारत शान्ति पर्व १९८/२/८, अनुशासन पर्व १४३/५१ आदि)। कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपना व्यवसाय चुन सकता था और बदल भी सकता था किन्तु व्यवसाय के साथ उसका वर्ण भी बदल जाता था। (ऐतरेय ब्राह्मण ४/१/१९०) इस सन्दर्भ में उपनिषदों में अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं—जैसे महामुनि सत्यकाम जावाल दासी के पुत्र थे, ऐतरेय मुनि इतरा शूद्रा के पुत्र थे, दीर्घतमा ऋषि शूद्र दासी उशिज के पुत्र थे। इसी प्रकार के अनेक उदाहरण महाभारत वन पर्व में भरे पड़े हैं। स्वयं महाभारत के रचयिता वेदव्यास केवट पुत्री की जारज सन्तान थे और इनके पिता पाराशर का जन्म चाण्डाली के घर हुआ था, वशिष्ठ गणिका पुत्र थे। तपस्वी विश्वामित्र का जन्म क्षत्रिय वंश में हुआ था। ब्रह्म ज्ञान के उपदेष्टा क्षत्रिय भी थे। जनक, अजातशत्रु, अश्वपति, केकय, प्रवाहण जेवालि आदि अनेक ब्रह्मवेत्ता क्षत्रिय राजे हुए हैं जिनसे ब्राह्मण ऋषि भी ब्रह्म विद्या सीखने जाते थे। (वृहदारण्यक उपनिषद ३/१/१ तथा ६/२/१)

एक ही परिवार में भिन्न व्यवसायी भी थे यथा ऋषि पुत्र अंगरिस निज परिचय देते हुए कहते हैं कि :—

मैं स्तवन रचना करता हूँ, मेरे पिता वैद्य हैं और माता पिसनहारी है। (ऋग्वेद ९/११/३)

इन सब उदाहरणों के उल्लेख से मेरा तात्पर्य यही है कि उत्तर काल में योग्यता और बुद्धि से कर्म की प्राप्ति होती थी और कर्म से वर्ण का निर्धारण होता था। (शतपथ ब्राह्मण

११/६/१०, तेतरेय संहिता १/६/१)। इस कथन की पुष्टि में बौद्ध कथा साहित्य में एक सुन्दर उल्लेख है :—

न वाचा ब्राह्मणो होति न वाचा होति अब्राह्मणो।
कम्मना ब्राह्मणो होति। कम्मना होति अब्राह्मणो॥

वैदिक काल में विशः शब्द का प्रयोग पृथ्वी पर बस गई सम्पूर्ण जाति के लिए होता था किन्तु धीरे-धीरे जब ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र वर्णों की सत्ता बन गई तो शेष जनता के लिए विशः शब्द का प्रयोग होने लगा (ऋग्वेद ८/३५/१७/१८) यहीं विशः शब्द विश्य और वैश्य में बदल गया। सबसे पहले वैश्य शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के दशं मंडल से पुरुष सूक्त में हुआ है। इस वर्ग के प्रमुख कर्म खेती, पशुरक्षा, व्यवसाय और हस्त-कलाओं का निर्माण आदि थे।

वैदिक काल में ही वर्ण व्यवस्था के साथ भिन्न-भिन्न कर्मों के आधार पर कुम्हार, केवट, ग्वाला, धीवर, नाई आदि जातियाँ भी बन गयी थीं। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के अनेकों उपवर्गों का जन्म हो चुका था। आवश्यकतानुसार तथा परि-स्थिति वश कार्यों के विस्तार के साथ-साथ ये कर्मी वर्ग ही जातियों में बदल गए।

गणों की स्थापना

समाज में बदलती परिस्थितियों के अनुसार मुनियों ने विविध सूत्र ग्रन्थों की रचना की और बढ़ते हुए समाज और उगते हुए जाति समूहों के लिए नियम और व्यवस्थायें निर्धारित कीं। इन सूत्र ग्रन्थों गौतम कृत धर्म सूत्र का बड़ा महत्व है। गौतम धर्म सूत्र व्यवस्था १०/४९ के अनुसार एक ही व्यवसाय या कार्यों में लगे व्यक्तियों का समूह अपना गण बना सकता

था। (१०/२०/२१ । गौतम-धर्म-सूत्र) गण की रक्षा हेतु सेना रखने का भी अधिकार इन गणों को था (कोटिल्य अर्थशास्त्र ६/२/१) इस प्रकार इन गणों की आन्तरिक व्यवस्था एवं सुरक्षा सम्बन्धी सभी अधिकारों की मान्यता राज्यों की ओर से होती थी। एक प्रकार से वह जनपद और गण विदेशों के सिटी स्टेट के रूप थे।

अनेकों गण और जनपदों के साथ वैश्य जनपद का वर्णन हमें सर्व प्रथम महाभारत में मिलता है।

"क्षत्रियोपनिवेशश्च वैश्य शूद्र कुलानि च,
शूद्राभीरश्च दरदः काश्मीरः पशुभिः सह।"

(भूमिपर्व अध्याय ६।६७)

अर्थात्—क्षत्रियों के उपनिवेश तथा वैश्य, शूद्र आभीर, दरद, कश्मीर तथा पशुपति नाम के जनपद बने।

उत्तर काल में प्रत्येक व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार व्यवसाय बदलने तथा आवश्यकतानुसार व्यवसाय चुनने की स्वतन्त्रता थी किन्तु हारीत मुनि ने व्यक्ति के व्यवसाय परिवर्तन की स्वतन्त्रता छीन ली, विशेषकर वैश्य वर्ग के लिए अपनी व्यवस्था देते हुए बताया कि यदि कोई वैश्य निज कर्म को बदलना चाहे तो वह ब्राह्मण और क्षत्रियों का कर्म ग्रहण नहीं कर सकता अपितु शूद्र कर्म स्वीकार करे।

दूसरी व्यवस्था में कहा गया कि वैश्य कर्म के साथ वेदाध्ययन का भी कोई औचित्य नहीं है। इससे वैश्य बर्ग के वेदाध्ययन का भी हनन हो गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मण और क्षत्रियों के गठ बन्धन के परिणाम स्वरूप वैश्यों की कर्म परिवर्तन और वेदाध्ययन की स्वतन्त्रता छिन गई। इस सन्दर्भ में हम स्मृतिकारों को कुछ व्यवस्थाओं का भी उल्लेख

यहाँ करना आवश्यक समझते हैं जिनसे यह प्रकट हो जायेगा कि किस प्रकार वैश्यों के कर्म बदले जाने लगे और वैश्य जाति की धार्मिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु वैश्य जाति के सङ्गठन परक अग्रोहा गण राज्य की स्थापना की गई।

वैश्य कर्मों में परिवर्तन–

स्मृति ग्रन्थों में अत्रि स्मृति सर्वाधिक प्राचीन है। इसके अनुसार वैश्यों के लिए निम्नांकित कर्म निर्धारित हुए:—

दानमध्ययन वार्ता यजन चेति वै विशः।
(अत्रि स्मृति अध्याय १ श्लोक १५)

अर्थात् (१) दानदेना, (२) वेदाध्ययन करना, (३) व्यापार तथा (४) यज्ञ करना ये चार कर्म वैश्य जाति के लिए थे।

आवश्यकता और बढ़ते कार्यों के अनुसार मनु ने वैश्यों के लिए चार से बढ़ाकर सात कर्म निर्धारित किए: —

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययननेव च।
वणिक पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥
(मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ६०)

(१) पशुओं की रक्षा, (२) दान देना, (३) यज्ञ करना, (४) अध्ययन करना, (५) वाणिज्य करना, (६) ब्याज लेना तथा (७) कृषि करना।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अत्रि तथा मनु द्वारा निर्धारित कर्मों से वैश्य जाति व्यापार में अग्रसर हो गयी। साथ हा नामारेष्टि, भलन्द वात्सप्रि, माकिल जैसे मन्त्रद्दष्टा ऋषि भी वैश्य जाति को उपलब्ध हुए जिन्हें वैश्य जाति का प्रवर कहा जाता है। वेदाध्ययन के फलस्वरूप ही समाधि जैसे तपस्वी धनी वैश्य इस जाति में जन्म लेते रहे।

किन्तु आगे चलकर हारीत मुनि ने अपने स्मृति ग्रन्थ में वैश्यों के सात कर्मों में अध्ययन और यज्ञ करने के दो कर्म छीन लिए :—

गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्योयथाविधि ।
दानदेयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानां भोजनम् ।।

(हारीत स्मृति, अध्याय २, मन्त्र ६)

अर्थात्–वैश्य, गोरक्षा, कृषि वाणिज्य यथाविधि करे एवं यथाशक्ति दान दें तथा ब्राह्मणों को भोजन करायें ।

हारीत मुनि की व्यवस्था के अनुसार वैश्यों का वेदाध्ययन एवं यज्ञ करने का अधिकार छिन जाने से वैश्य समाज में ऋषि-मुनियों एवं याज्ञिक प्रतिभाओं के आगमन स्रोत रुक गये ।

□□

अग्रवाल जाति की उत्पत्ति

अग्रवाल जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शिवकर्ण नामक भाट का यह दोहा प्रचलित है—

बदि मगसिर शनि पंचमी, त्रेता पहले चर्ण ।
अग्रवाल उत्पन्न भये, सुनि भाषै शिवकर्ग ।।

इस दोहा के अनुसार अग्रवालों की उत्पत्ति त्रेता युग के प्रथम चरण में अगहन कृ० ५ शनिवार को हुई थी । इसकी पुष्टि इतिहास सम्मत प्रामाणिक सामग्री से नहीं की गई है ।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक और अग्रवाल कुल भूषण भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी ने संवत १९२८ में 'अग्रवालों की उत्पत्ति' नामक एक छोटी पुस्तक में 'महालक्ष्मी व्रत कथा' के आधार पर अग्र का बालक (अग्रवाल) माना है ।

इतिहासकार श्री सत्यकेतु जी विद्यालंकार ने अग्रवाल इतिहास के बारे में जो कुछ लिखा है उसे एकदम अस्वीकार नहीं किया जा सकता है । उन्होंने माना है कि अग्रवाल जाति के पूर्वज महाराज अग्रसेन थे और उनका तथा उनके पुत्रों का विवाह नाग कन्याओं के साथ हुआ था और उनकी सन्तानों से अग्रवाल वंश का विस्तार हुआ । महाराज अग्रसेन के १८ पुत्र और उनसे अग्रवालों के १७।। गोत्र भी स्वीकार किए हैं । अग्रवाल जाति का पुराना नाम 'अग्रवंश' भी माना है ।

श्री जगन्नाथ दास जी रत्नाकर के अनुसार अग्रवाल किसी समय क्षत्रिय थे और सेना के अग्रभाग की रक्षा किया करते थे जिन्हें अग्रपाल (**van guard**) कहते थे। कालांतर यही शब्द अग्रवाल हो गया।

विभिन्न विद्वानों और इतिहासकारों की यह मान्यता निर्विवाद है कि अग्रवालों का निकास अग्रोहा से ही है और अग्रवाल शब्द इसका सूचक है। अब इस बारे में अधिक खोज या बहस की आवश्यकता नहीं रह गई है।

कुछ विद्वानों ने अग्रोहा से अग्रवाल शब्द का सम्बन्ध जोड़कर उसका अर्थ अग्रोहावाल अर्थात् अग्रोहा के रहने वाले किया है। जिस प्रकार खंडेलवाल शब्द का अर्थ खंडेला का रहने वाला है।

□ □

शाखायें व उपजातियां

समय की गति के साथ-साथ अग्रवाल जाति में भी कई शाखायें व उपजातियाँ पैदा हो गई और इनमें ऊँच-नीच का विचार होने लगा।

मारवाड़ी अग्रवाल :—अगरोहा के नष्ट होने पर जब अग्रवाल लोग अन्य स्थानों में जाकर बसने लगे तब उनका एक बहुत बड़ा भाग दक्षिण में राजपूताना की तरफ चला गया। और चूँकि वे लोग मारवाड़ में जाकर बस गये थे इसलिए वे मारवाड़ी अग्रवाल के नाम से बुलाए जाने लगे। दिल्ली भारत की राजधानी रही है और जो मार्ग पश्चिमी समुद्रतट के बन्दरगाहों को जाता था वह मारवाड़ (मरुस्थल) से होकर गुजरता था इस कारण दिल्ली में आने जाने वाले सभी यात्रियों को मारवाड़ से होकर आना जाना पड़ता था जिस कारण यह व्यापार का क्षेत्र बन गया था मारवाड़ी अग्रवालों ने इससे पूर्ण लाभ उठाया और वे दूसरे अग्रवालों की अपेक्षा अधिक धनवान् और व्यापारी बन गये। दूसरे मरुस्थल में बस जाने के कारण उनकी बोल चाल, रहन-सहन, रीति-रिवाज में भी काफी भेदभाव हो गया और वे अपने आपको दूसरे प्रान्तों में बसने वाले अग्रवालों से पृथक समझने लगे।

देशी अग्रवाल :—जो लोग अन्य प्रान्तों में जाकर बस गए वे देशी अग्रवाल के नाम से पुकारे जाने लगे। पूर्व में रहने वाले पुरविये, और पश्चिम में रहने वाले पछहिए अग्रवाल कहलाये जाने लगे।

महमिये :—जो लोग अगरोहा के उजड़ने के बाद महम में जाकर आबाद हो गये, वे महमिये अग्रवाल कहलाने लगे और जब मुसलमानों का जोर हो गया तब वे लोग महम को छोड़कर अन्यत्र स्थानों में जाकर बस गये । दिल्ली में महमिये अग्रवाल काफी संख्या में रहते हैं । इसी प्रकार जो भटिण्डे के आस-पास के इलाके में जाकर बस गये, वे जंगली कहलाये, हरियाना में बसने वाले हरियानि, बागड़ के वागड़ी, सहराला जिला लुधियाना के सहरालिए, और लोहागढ़ जिला रोहतक के लोहिये इत्यादि नामों से पुकारे जाने लगे ।

अग्रवाल जाति का एक बड़ा भारी भाग कुमायूं के पर्वतों में निवास करता है जो अपने नाम के साथ "शाह" शब्द का प्रयोग करते हैं । ये लोग जब अगरोहे का पतन हुआ और मुसलमानों का जोर बढ़ता गया सुरक्षित स्थान यानी पर्वतों पर जाकर बस गये थे । इसी प्रकार अग्रवाल जाति का एक भाग बम्बई प्रान्त में निवास करता है जो गुजराती अग्रवाल के नाम से पुकारे जाते हैं। ये लोग अगरोहे के के विध्वंस होने पर मालवा देश में चले गये और वहाँ इन्होंने आगर नामक शहर (आधुनिक आगरा) बसाया इसी कारण ये लोग अपने आपको आगर के मूल निवासी मानते हैं और अग्रवाल लिखने के बजाय आगर वाला लिखते हैं ।

इन जातियों के अलावा कुछ वैश्य जातियां ऐसी भी हैं जो अपने आप को अग्रवाल जाति की शाखा मानतीहैं । उनका कहना है कि वे स्थानभेद के कारण स्वतन्त्र जातियां मानी जाने लगीं । ऐसी जातियों में वरणवाल जाति अपने आप को महाराज अग्रसेन के वंशज बताती हैं और उनका कहना है कि वे लोग अगरोहा से निकल कर वरण देश में जाकर बस गये थे और

इसी कारण बरणवाल कहलाने लगे । वरणबुलन्दशहर का प्राचीन नाम है ।

इसी प्रकार पंजाब में महाजन जाति के गोत्र भी अग्रवालों के समान हैं । और वे अग्रवाल जाति के अंग गिने जाते हैं । इस जाति में सर बख्शी टेकचन्द पंजाब हाई कोर्ट तथा श्री मेहरचन्द महाजन सुप्रीम कोर्ट के जज रहे हैं ।

आचार भेद:—इससे भी कई उपजातियाँ बन गई लोग इस भेद को नसल व रक्त के आधार पर मानते हैं । उनका कहना है कि जो रक्त की दृष्टि से पूर्णतया शुद्ध हैं वे बीसे कहलाते हैं और जो इस दृष्टि से कम उतरते हैं वे दस्से । मध्य तथा बम्बई प्रान्तों में कुछ अग्रवाल ऐसे भी हैं जो पंजे कहलाये जाते हैं, उनमें रक्त शुद्धता कोई चौथाई समझी जाती है ।

दस्से अग्रवाल—इस को रक्त का आधार न मानकर कहते हैं कि अग्रसेन के पुत्रों का विवाह दशानन तथा विशानन नामक दो राजाओं की कन्याओं के साथ हुआ था। इस कारण दशानन पुत्रियों की सन्तान दस्सा और विशानन पुत्रियों की सन्तान बीस्से कहलाई। दूसरी ओर कुछ लोगों का कहना है कि जो सन्तान अग्रसेन की नाग-पत्नियों से हुई वे बीसा तथा अन्य रानियों की सन्तान दस्सा कहलाई । हम इस आधार को नहीं मानते क्योंकि हमारे विचार में अग्रवाल जाति महाराज अग्रसेन के पुत्र व पुत्रों की सन्तान नहीं है, वरन् उनसे भी पहले की है । हम यह मानने को तैयार हैं कि दस्से वे लोग कहलाये होंगे जिन्हें सामाजिक अपराधों के कारण दण्ड स्वरूप विस्सा व वैश्य समाज से बाहिर कर दिया गया होगा क्योंकि प्राचीन काल में "आपस्तम्ब" धर्मसूत्र में सामाजिक दण्ड व्यवस्था का

उल्लेख है। इस आधार पर यह सहज में अनुमान किया जा सकता है कि समाज से बहिष्कृत लोगों ने अपना एक अलग समाज बना लिया हो। ऐसा होना कोई असम्भव नहीं। इन दस्से लोगों को गोट बनिया के नाम से भी पुकारा जाता रहा है।

गिन्दौड़िया या दिलवारी—दिलवारी अथवा गिन्दौड़िया (गन्धारिया) अग्रवाल भी अपना सम्बन्ध अग्रसेन के किसी वंशज गंधरव से बताते हैं और उनका विचार है कि गिन्दौड़ियां उसी शब्द का अपभ्रंश है। कुछ लोगों का कहना है कि मेरठ दिल्ली बुलन्दशहर के आस-पास के रहने वाले अग्रवालों में विवाह तथा वृद्ध लोगों की मृत्यु के अवसर पर निमन्त्रण के साथ जो गिन्दौड़ा दिया जाता था और जिन लोगों ने इस प्रथा को कायम रखा वे तथा उनकी सन्तान गिन्दौड़िया कहलाने लगी। श्री रघुवीर सिंह ने अपनी पुस्तक "कौम मारुष: जीवन चरित्र महाराज अग्रसेन" में लिखा है कि इन लोगों का दूसरा नाम "दिलवारी" है जिसको वह दिल्ली का रूपान्तर बतलाते हैं। यह हो सकता है क्योंकि जो अग्रवाल महिम में जाकर बस जाने के कारण महमिए कहलाने लगे इसी प्रकार जो लोग दिल्ली व दिल्ली के आसपास में बस गये वे दिलवारी के नाम से प्रसिद्ध हो गए हों।

कदीमी—इसी प्रकार एक और वर्ग कदीमी अग्रवाल के नाम से प्रसिद्ध है। वे मुख्यत: अलीगढ़, खुर्जा और बुलन्दशहर में पाए जाते हैं। इन लोगों का कहना है कि इनके पूर्वज जब लड़ाई में लड़ने गए हुए थे तब अन्य लोग अगरोहा छोड़ कर चले गए और युद्ध पश्चात् लोग वापिस लौटे तो वे वहीं पर रह गए। इससे वे कदीमी अर्थात् पुराने

स्थान पर रहने वाले कहलाए। हमारी समझ में यह बात जंचती नहीं क्योंकि युद्ध से वापिस लौटकर आने पर वहाँ पर फिर से बसने का सवाल नहीं पैदा होता क्योंकि अग्रोहा को बहुत बुरी तरह से नष्ट भ्रष्ट किया गया था। यह तो हो सकता है कि अगरोहे में कुछ लोग देर तक ठहरे रहे हों और काफी बाद में निकले हों और अपने स्थान को छोड़कर बाहर न जाना चाहते हों इसी कारण वे अपने आपको कदीमी कहलाने लगे होंगे। यह इसी प्रकार हुआ होगा जैसा कि भारत के विभाजन के बाद भी कुछ हिन्दू पाकिस्तान में ठहरे रहे और पहले निकाल गए हिन्दुओं को भगोड़े कहकर पुकारने लगे थे।

राजवंशी—एक और वर्ग है जो अपने आप को राजशाही या राजवंशी नाम से पुकारता है। डा० सत्यकेतु जी का कथन है कि आरम्भ में इनमें और दूसरे अग्रवालों में कोई भेद न था परन्तु १८ वीं शताब्दी में एक जानसठ निवासी रतन चन्द ने मुगल दरबार में दीवान पद प्राप्त कर लिया और उनको राजा की पदवी भी प्राप्त हुई। यह बात कई अग्रवालों को पसन्द न आई और उन्होंने उनका तथा उनके साथियों का बहिष्कार कर दिया। तब से उन लोगों की एक पृथक् बिरादरी सी बन गई जिसे आरम्भ में राजशाही और बाद में राजवंशी कहा जाने लगा। हो सकता है कि उन कुछ अग्रवालों का एक अलग समूह सा बन गया हो जिन्होंने मुगल सम्राट को अपना लिया हो जैसा कि कई राजपूत राजाओं ने सम्राट अकबर से सन्धि ही नहीं की वरन् उनको अपनी बेटियाँ भी देकर सम्राट से नाता जोड़ लिया था जिससे महाराणा प्रताप को उनके प्रति घृणा हो गई और उसने बादशाह के सामने सिर न झुकाया।

ऐसे अग्रवालों को राजशाही कहना कोई अनुचित न होगा और वे शनैः शनैः राजवंशी कहलाये जाने लगे होंगे। श्री परमेश्वरी लाल गुप्त अपनी पुस्तक 'अग्रवाल जाति का विकास' में एक ऐसे शिलालेख का उल्लेख करते हैं जो बुलन्दशहर के 'आहार' नामक स्थान से महाराज 'भोज प्रतिहार' के समय का मिला है और उसमें दानपत्रों में एक 'राजक्षतयान्वय' वणिक् का उल्लेख दिया हुआ है जिससे अनुमान होता है कि इसका वर्तमान के राजवंशी अग्रवाल से ही तात्पर्य है।

बहत्तरिया—बहत्तरिया वैश्य भी अपने को विकसित अग्रवाल जाति का अंग कहते हैं। कहा जाता है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय गोकुलचन्द और रतनचन्द नामक दो व्यक्ति अपने साथियों सहित विश्वासघात कर उससे जा मिले थे। कुछ लोग सिकन्दर के बजाय मुहम्मद बिन कासिम का नाम लेते हैं। कहते हैं कि उस समय कोई ७२ परिवारों से सम्बन्ध तोड़ लिया गया था। वे लोग बहत्तरिया नाम से एक स्वतन्त्र श्रेणी बन गए। श्री चन्द्रराज भंडारी ने इन लोगों की सन्तान का नाम कुलाली और लोहिया बतलाया है। इनमें से कुछ लोग गुजहरे, गोलवारे, गोहिए कहलाते हैं और वे सम्भवतः गोकुलचन्द की सन्तान व उसके साथियों की सन्तान मालूम होते हैं।

अग्रहारी व अग्रहरी—उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश में एक जाति पाई जाती है जो अग्रहारी व अग्रहरी के नाम से प्रसिद्ध है। इनके बारे में कहा जाता है कि ये अगरोहा वासी तथा अग्रवाल जाति की एक शाखा है श्री भवानी प्रसाद गुप्त का कहना है कि अग्रसेन के पुत्र हरि की सन्तान हैं। 'वर्ण विवेक चन्द्रिका' में लिखा है कि ये लोग अग्रवाल पिता और

ब्राह्मणी माता की सन्तान हैं इनके गोत्र अग्रवालों के समान हैं—जैसे महाजन जाति के गोत्र अग्रवालों के गोत्रों से मिलते हैं। इसी प्रकार भार्गव जाति के गोत्र भी मिलते हैं जो अब भृगुऋषि की सन्तान के नाम पर अग्रवाल जाति से अलग हो गई हैं। वे इसी प्रकार महाजन जाति ने भी अपना पृथक् रूप धारण कर लिया है।

धर्म के आधार पर भेद

धर्म के आधार पर भी अग्रवाल जाति में कुछ भेद-भाव पैदा हो गये। इस जाति में एक बहुत बड़ी संख्या जैन धर्मावलम्बियों की है जो सरावगी नाम से पुकारे जाते हैं। अग्रवालों की जैन हस्तलिखित पुस्तकों में जो कि कोई ४००-५०० वर्ष पुरानी हैं उनमें अग्रवाल व अग्रोतकान्वय ऐसा उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि इनके पूर्वजों को लोहाचार्य स्वामी ने जैन धर्म की दीक्षा दी थी।

जैनी—इतिहास में दो लोहाचार्यों का उल्लेख है। एक तो चन्द्रगुप्त मौर्य कालीन भद्रबाहु स्वामी के शिष्य थे और दूसरे सामन्त भद्र स्वामी के, जो दूसरी ईसा शताब्दी में हुए। इसमें कोई सन्देह नहीं हम अग्रवालों पर जैन धर्म का बहुत बड़ा प्रभाव हुआ।

समाजी:—जैन धर्मावलम्बी लोगों के अतिरिक्त अन्य अग्रवाल प्रायः वैष्णव धर्म के अनुयायी है। आर्य समाज व वैदिक धर्म की उन्नति में लाला लाजपराय का बहुत बड़ा हाथ रहा और उन्होंने विदेशों में भी आर्य समाज का प्रचार कर भारतीयों वैदिक धर्म का बहुत प्रभाव बढ़ाया। इस कारण इस समय अग्रवालों में काफी संख्या में आर्य समाज के सिद्धान्तों पर चलने वाले पाये जाते हैं।

सिख—पंजाब के नाभा, जींद पटियाला आदि भागों में अग्रवाल सिख धर्म के अनुयायी पाये जाते हैं। धर्म के आधार पर अग्रवालों से केवल पारिवारिक-भेद पाया जाता है। सामाजिक जीवन में इसका कोई प्रभाव नहीं है। उनके बीच खान-पान, व्याह आदि में कोई विशेष रुकावट नहीं है परन्तु कहीं कहीं अजैन अग्रवाल अपनी कन्याओं का विवाह तो जैनियों से कर देते हैं परन्तु जैनी कन्याओं को अपने घर में नहीं लाते। इसी प्रकार सनातन धर्मी अग्रवाल आर्य-समाजियों को तो अपनी पुत्रियाँ विवाह देते हैं परन्तु इससे विपरीत आर्यसमाजी कन्याओं को अपने घर में लाना पसन्द नही करते। इन लोगों का कहना है कि कन्या पराया धन है।

गोत्र

महाराज अग्रसेन के पुत्र और उनके गुरू आश्रम इस प्रकार थे। ये पुत्र १८ कुलों का प्रतिनिधित्व करते थे।

गणराज्य पुत्र	आश्रम	अधिष्ठाता ऋषि
१—विभु	गर्ग ऋषि	गर्ग ऋषि
२—गेंदूमल	गौतम ऋषि	गोयल ऋषि
३—कर्णचन्द्र	कश्यप मुनि	कचहल ऋषि
४—मणिलाल	कौशिक मुनि	कौशल ऋषि
५—बन्धुमान	वशिष्ठ ऋषि	दीनदयाल ऋषि
६—ढावदेव	धौम्य ऋषि	ढालन ऋषि
७—सिन्धुपति	सिंगल ऋषि	सिंगल ऋषि
८—जीत जनक	वृहस्पति जी	जिंदल ऋषि
९—मन्त्र पति	विश्वामित्र	मैथल ऋषि
१०—तम्बोलकर्ण	शांडिल्य ऋषि	मतगल ऋषि
११—ताराचन्द्र	शाकल्य ऋषि	तायल ऋषि
१२—वीरभद्र	विशिष्ट मुनि	बांसल ऋषि
१३—वासुदेव	कौशल ऋषि	कांसल ऋषि
१४—नाहरसेन	कोदन मुनि	तांगल ऋषि
१५—अमृतसेन	मुद्गल ऋषि	मङ्गल ऋषि
१६—इन्द्रसेन	एतरेय ऋषि	एरन ऋषि
१७—माधोसेन	पाराशर ऋषि	मधुकल ऋषि
१८—गोधरसेन	गर्ग ऋषि	गर्ग ऋषि

महाराज अग्रसेन जी के पुत्रों ने जिन ऋषियों से शिक्षा प्राप्त की उनके नाम, गोत्र तथा उनके आश्रम के नाम से उनका गोत्र प्रसिद्ध होगया।

नाम इस प्रकार हैं—

गण पुत्र	प्रचलित गोत्र	शुद्ध गोत्र
१—विभु	गर्ग	गर्ग
२—गेंदूमल	गोयल	गोभिल
३—कर्णचन्द्र	कछल	कश्यप
४—मणिपाल	कांसिल	कौशिक
५—बन्धुभान	बिंदल	वशिष्ठ
६—ढाबदेव	ढालन	धौम्य
७—सिन्धुपति	सिंगल	शांडिल्य
८—जीत जनक	जिंदल	जैमुनि
९—मन्त्रपति	मीतल	मैत्रेयी
१०—तम्बोलकर्ण	तिंगल	तांडेय
११—ताराचन्द्र	तायल	तैत्तिरेय
१२—वीरभद्र	बांसल	वतस्य
१३—वासुदेव	कांसल (टेरन)	कोशल
१४—नाहरसेन	ताँगल	नागेन्द्र
१५—अमृतसेन	मङ्गल	मुद्गल
१६—इन्द्रसेन	एरन	धनञ्जय
१७—माधोसेन	मधुकल	पाराशर
१८—गोधरसेन	गोइन	गौतम

अग्रवालों में प्रसिद्ध है कि उनके १७॥ गोत्र हैं। अधिकांश लोगों को शङ्का होती है कि यह आधा गोत्र किस प्रकार

बना। इस आधे गोत्र का नामकरण इस प्रकार हुआ कि—महाराज अग्रसेन के १८ पुत्र थे जिन्होंने १७ ऋषि आश्रमों में शिक्षा पाई थी। गर्ग ऋषि के आश्रम में दो पुत्र कुमार विशपदेव और गोधरसेन ने शिक्षा पाई थी। इसलिए दोनों का गोत्र गर्ग होता है किन्तु दोनों वंशधरों की पृथक पहिचान के लिए गोत्रों में परिवर्तन रखना आवश्यक था। अतः कुमार विशपदेव का गर्ग गोत्र निश्चित किया गया और कुमार गोधरसेन का गोत्र गौतम रखा। दोनों गोत्रों के अधिष्ठाता ऋषि एक ही होने से यह भी निश्चित किया गया कि गर्ग और गौतम (गोइन) गोत्र वाले आपस में विवाह न करें। उसी निश्चयानुसार आज भी गर्ग और गौतम गोत्र वालों में आपस में विवाह सम्बन्ध नहीं होता है। यही गौतम (गोइन) गोत्र सर्व साधारण में आधा माना जाता है। इस प्रकार कुल १७॥ गोत्र गिने जाते हैं किन्तु वास्तव में १८ गोत्र होते हैं।

□ □

गौरवपूर्ण अतीत

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि भारतीय इतिहास में गुप्त सम्राटों का काल स्वर्णिम युग था। उस समय भारतीय सभ्यता चरमोत्कर्ष पर थी। यदि हम आधुनिक भारत की तुलना गुप्त-कालीन भारत से करें तो बहुत अंशों में गुप्त कालीन भारत का चित्र दूसरा ही था। उस समय जन साधारण का चरित्र बड़ा उज्वल था। लोग कर्तव्यनिष्ठ, धर्मप्राण, सत्य परायण और चरित्रवान् थे। वचन निर्वाह और सत्य संधता उनके विशेष गुण थे। लोग बाहर जाते तो घर का ताला नहीं लगाते। चोरी, डकैती का नाम नहीं था। हजारों लाखों के लेन देन जुबानी होते थे। लोगों में सचाई, वीरता और परोपकार के गुण प्रचुर मात्रा में पाये जाते थे। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान ने अपने तत्कालीन यात्रा वर्णनों में इसका उल्लेख विस्तार से किया है। उसने यह भी लिखा है कि गुप्त सम्राट वैश्य कुलोत्पन्न थे। श्री गुप्त नामक वैश्य ने गुप्तवंश की स्थापना की। उस समय कौन जानता था कि इस वंश के वंशज भविष्य में भारत के अभूतपूर्व सम्राट होंगे। अनेक इतिहासकारों ने गुप्त वंश के राजाओं को वैश्य कुलोत्पन्न तो लिखा ही है परन्तु उनका कहना है कि राजपद प्राप्त कर ये लोग क्षत्रियतत्व को प्राप्त हो गए।

प्राचीन भारत में सभा और समिति नामक दो संस्थायें राज्य शासन एवं प्रबन्ध से सम्बन्धित होती थी। ऋगवेद में

इनको प्रजापति की दो पुत्रियाँ कहा है। इन संस्थाओं के सदस्यों में वैश्यों की संख्या ही सबसे अधिक होती थी इससे प्रकट होता है कि वैदिककाल में राज्य कार्य में भी वैश्यों का सहयोग प्रचुर में रहता था।

मुगलकाल में हेमचन्द्र (हेमू) की वीरता उल्लेखनीय है जिसने मुगलों की सेना को खदेड़ कर दिल्ली पर अपना आधिपत्य स्थापित किया और विक्रमादित्य की उपाधि धारण की।

अकबर के मुख्य और प्रसिद्ध अग्रवाल बजीर मद्धूशाह थे, मद्धूशाही पैसा इन्हीं के नाम से चला था।

□□

महाभारत में–

तुलाधार नामक वैश्य

संदर्भ—महाभारत के शान्ति पर्व में तुलाधार नामक वैश्य का जाजल ऋषि के साथ धर्म विषयक सम्वाद हमें मिलता है।

जाजलि नाम के एक ब्राह्मण थे जो सदा वन में रहते थे। उन्हें अपने तपोवल से सम्पूर्ण लोकों को देखने की शक्ति प्राप्त होगई थी किन्तु धर्म का पालन करने में वह तुलाधार की बराबरी नहीं कर सकते थे।

तुलाधार नामक एक महाबुद्धिमान वैश्य काशीपुरी में रहते थे जो बहुत बड़े धर्मात्मा थे जाजलि ऋषि भेंट करने काशी पहुँचे थे।

यह सवाद सामाजिक और राष्ट्रीय नये परिवेश में इसलिए महत्वपूर्ण है कि व्यापार में संलग्न वैश्य प्राचीनकाल में कितने चरित्रवान हो सकते थे, इसकी कल्पना आज वैश्य वर्ग कर सकता है।

तुलाधार वैश्य ऐसे चरित्र के व्यक्ति थे कि शोषण को निंदनीय मानते थे, परम्परावादी नहीं थे, दूसरे के कष्टों का उन्हें सदैव ध्यान रहता था, धन के लोभी नहीं थे और अहिंसा प्रधान कार्य वह करते थे।

स्वयं सन्तुष्ट रहकर दूसरों को सन्तोष देना उनका आदर्श था।

वैश्य समाज का मार्ग दर्शन करने के लिए इतिहास में तुलाधार जैसे अनेक व्यक्ति आदर्श चरित्र के धनी रहे हैं जिनसे हम प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं तथा गौरवान्वित हो सकते हैं।

आकाशवाणी सुनकर जाजलि को बड़ा अमर्ष हुआ, वे तुलाधार को देखने के लिए वहाँ से चल दिये। और बहुत दिनों बाद काशी में आये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने तुलाधार को सौदा बेचते देखा। महात्मा तुलाधार भी जाजलि को देखते ही उठकर खड़े हो गये। फिर आगे बढ़ कर बड़ी प्रसन्नता से उन्होंने ब्राह्मण का स्वागत सत्कार किया।

तुलाधार बोले—विप्रवर ! आप मेरे पास आ रहे हैं। यह बात मुझे मालूम हो गई थी, अब मेरी बात सुनिये। आपने समुद्र के तट पर एक वन में रहकर बड़ी भारी तपस्या की है। उसमें सिद्धि प्राप्त होने के बाद आपके मस्तक पर चिड़ियों के बच्चे पैदा हुए। और आपने उनकी भली भाँति रक्षा की। जब उनके पर निकल आये और वे उड़ कर इधर-उधर चले गये तो अपने को धर्मात्मा समझ कर आपको गर्व हो गया। उसी समय मेरे विषय में आकाशवाणी हो गई और उसे सुनकर आप अमर्ष में भरे मेरे पास आये हैं विप्रवर ! आज्ञा दीजिए, मैं आपका कौन सा प्रिय कार्य करूँ।

भीष्म जी कहते हैं—बुद्धिमान तुलाधार के इस प्रकार कहने पर जप करने में श्रेष्ठ जाजलि बोले—"वैश्यवर ! तुम तो सब प्रकार के रस, गन्ध, वनस्पति, औषधि, मूल और फल आदि बेचा करते हो, तुम्हें ऐसा ज्ञान और धर्म में निष्ठा रखने वाली बुद्धि कैसे प्राप्त हुई ये सब बातें बताओ।

तुलाधार ने कहा—मुनिवर ! मैं परम् प्राचीन और सबका हित करने वाले सनातन धर्म को उसके गूढ़ रहस्यों

सहित जानता हूँ। किसी भी प्राणी से द्रोह न करके जीविका चलाना श्रेष्ठ धर्म माना गया है। मैं उसी धर्म के अनुसार जीवन निर्वाह करता हूँ। काठ और घास-फूंस से छाकर मैंने अपने रहने के लिए यह घर बनाया है। अलन्त, चन्दन पदमक, तुङ्गकाष्ठ आदि गन्ध और भी छोटी बड़ी वस्तुओं का विक्रय करता हूँ। मेरे यहाँ तरह-तरह के रसों की बिक्री होती है। मदिरा नहीं बेची जाती। ये सब चीजें मैं दूसरे यहाँ से खरीद कर बेचता हूँ, स्वयं तैयार नहीं करता हूँ, मेरा न कहीं राग है न द्वेष, सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति मेरे मनमें एक जैसा भाव है ! यही मेरा व्रत है। मेरी तराजू सबके लिए बराबर तौलती है। मैं दूसरों के कार्यों की निन्दा अथवा स्तुति नहीं करता। मिट्टी के ढ़ेले, पत्थर अथवा सोने में भेद नहीं मानता। जैसे वृद्ध, रोगी और दुर्बल मनुष्य विषयभोगों की स्पृहा नहीं रखते, उसी प्रकार मेरे मनमें भी उन्हें प्राप्त करने की इच्छा नहीं होती जिस समय पुरुष को दूसरों से भय नहीं होता दूसरे भी उससे भय नहीं मानते। जब वह किसी से द्वेष अथवा किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता तथा किसी भी प्राणीके प्रति उसके मनमें बुरे विचार नहीं उठते, उस समय वह ब्रह्म को प्राप्त होता है जैसे मौत के मुँह पड़ने से सबको भय होता है, उसी प्रकार जिसके नाम से सब लोग थर-थर काँपते हैं तथा जो कटुवचन बोलने वाला दण्ड देने में कठोर है, ऐसे पुरुष को महान् भय का सामना करना पड़ता है। जो वृद्ध है, पुत्र और पौत्रों से युक्त हैं शास्त्र के अनुसार आचरण करते हैं, और किसी भी जीव का हिंसा नहीं करते, उन महात्माओं के वर्ताव के अनुसार मैं भी चलता हूँ। बुद्धिमान मनुष्य सदाचार का पालन करने से शीघ्र ही धर्म के रहस्य को जान लेता है। नदी की धारा में बहते हुए तिनकों और

काष्ठों का संयोग हो जाया करता है। यह संयोग दैवेच्छा से ही होता है। जान बूझकर नहीं किया जाता। इसी प्रकार संसार के प्राणियों का भी परस्पर संयोग वियोग होता रहता है। जिससे जगत का कोई भी प्राणी कभी किसी प्रकार किंचित भी भय नहीं मानता। उस पुरुष को सम्पूर्ण भूतों से अभय प्राप्त होता है। जैसे नदी के तीर पर आकर कोलाहल करने वाले मनुष्य के डर से सब जलचर जीव पानी के भीतर छिप जाते हैं तथा जिस प्रकार भेड़ियें को देखकर सभी थर्रा उठते हैं, उसी प्रकार जिससे सब लोग डरते हों, उसको भी दूसरों से डरना पड़ता है। इस अभयदान रूप धर्म का प्रयत्न पूर्वक पालन करना उचित है ! जो इसको आचरण में लाता है वह सहाय-वान्, द्रव्यवान्, सौभाग्य शाली तथा परलोक में कल्याण का भागी होता है। अतः जो अभय दान देने में समर्थ होते है, उन्हें भी विद्वान पुरुष श्रेष्ठ बतलाते हैं। उनमें भी जो क्षण भंगुर विषयों की इच्छा वाले हैं, तो कीर्ति और मान बड़ाई के लिए अभयदानरूप व्रत का पालन करते हैं। किन्तु जो चतुर हैं वे ब्रह्म की प्राप्ति के लिए उसका आश्रय लेते हैं। तपदान यज्ञ और ज्ञानोपदेश के द्वारा जो फल प्राप्त होता है वह सब केवल अभयदान से ही मिल सकता है। जो सम्पूर्ण जीवों को अभय की दक्षिणा देता है वह मानों समस्त यज्ञों का अनुष्ठान कर लेता है। तथा उसे भी सब ओर से अभयदान मिल जाता है। अहिंसा से बढकर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जो सब प्राणियों को अपना ही शरीर समझता है तथा सबको आत्मभाव से देखता है वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। उसे किसी विशेष स्थान की प्राप्ति नहीं होती। देवता भी उसकी गति का पता नहीं पाते। विप्रवर ! जीवों की अभयदान देना सब दानों

में उत्तम हैं । मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ, इस पर विश्वास कीजिए ।

धर्म का तत्व अत्यन्त सूक्ष्म है कोई भी धर्म निष्फल नहीं होता । स्वर्ग या ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ही धर्म की व्याख्या की गई है । सूक्ष्म धर्म आसानी से अपनी समझ नहीं आ सकता। जो लोग बैलों को वधिया करते बाँधते, मारपीट कर काम कराते और उन पर अधिक बोझा लादते हैं जो कितने ही जीवों को मारकर खा जावे मनुष्य को दास बनाते और उनके परिश्रम का फल आप भोगते हैं तथा जो बल और बन्धन का दुःख जानते हुए भी दूसरों को वैसे ही कष्ट देते हैं, ऐसे लोगों की आप क्यों नहीं निन्दा करते । (मुझे ही निन्दनीय क्यों समझते हैं ? मैं तो अपनी जीविका का ही कार्य कर रहा हूँ) । पाँच इन्द्रियों वाले समस्त प्राणियों में सूर्य, चन्द्रमा, वायु, ब्रह्मा, प्राण, यज्ञ और यमराज आदि देवताओं का निवास है । फिर भी जो लोग उन्हें बेचकर जीविका चलाते हैं, क्या वे निन्दा के पात्र नहीं है । बकरा अग्नि का, भेड़ वरुण का, घोड़ा सूर्य का और पृथ्वी विराट का रूप है तथा गाय और बछड़े चन्द्रमा के स्वरूप हैं । इनको बेचने से कल्याण की प्राप्ति नहीं होती । मैं तो तेल घी शहद और औषधियों की विक्री करता हूँ, इसमें क्या हानि है । बहुत से मनुष्य तो देश और मच्छरों से रहित देश में पैदा हुए, सुख से पले हुए पशुओं को उनकी माताओं से अलग करके ऐसे देशों में ले आते हैं जहाँ देश मच्छर और कीचड़ की अधिकता होती है । वहाँ उन पर भारी बोझ लादकर अनुचित रूप से कष्ट पहुँचाते हैं । उस अवस्था में इन बेचारे पशुओं को बड़ा दुःख होता है । मैं तो इसे भ्रूण हत्या से भी बड़ा पाप समझता हूँ । श्रुति में गौ को अघ्न्या (अवध्य)

कहा गया है, फिर कौन उसे मारने का विचार करेगा । जो पुरुष गाय बैलों को मारता है वह महान् पाप करता है । इस तरह के अमङ्गलकारी और भयंकाकर आचार इस जगत में बहुत से प्रचलित है । अमुक बात प्राचीन काल से चली आ रही है, यही सोचकर आप उसकी बुराइयों पर ध्यान नहीं देते । परिणाम पर विचार करके ही किसी भी धर्म को स्वीकार करना चाहिए । लोगों की देखा देखी करना अच्छा नहीं है । अब मैं अपने बर्ताव के सम्बन्ध में कुछ निवेदन कर रहा हूँ, उसे सुनिये ! जो मुझे मारता है तथा जो मेरी प्रशंसा करता है । वे दोनों ही मेरे लिए बराबर है, मैं उसमें से किसी को प्रिय और अप्रिय नहीं मानता । बुद्धिमान पुरुष ऐसे ही धर्म की प्रशंसा करते हैं । यही युक्ति सङ्गत है । पति भी इस का सेवन करते हैं तथा धर्मात्मा मनुष्य अच्छी तरह विचार कर सदा इसी धर्म का अनुष्ठान करते हैं ।

□ □

अग्रवाल समाज के गौरव

अग्रवाल जातीय समाज का व्यापार में जहां प्रधान स्थान है वहाँ साहित्य, राजनीति, देशभक्ति, समाज सेवा, शिक्षा, दानशीलता और धर्मशीलता तो इस जाति के मुख्य गुण हैं।

यह जाति केवल व्यापार करने और पैसा कमाने वाली है, यह कहना और मानना नितान्त गलत और इस जाति के महान् व्यक्तियों का अपमान है। श्रेष्ठ चरित्र और ईमानदारी से ओत प्रोत इस समाज के व्यक्तियों की लम्बी सूची प्राचीन-काल में भी रही है और यह परम्परा खत्म नहीं हुई है। इस जाति के लोग इस बात पर उचित गर्व करने के अधिकारी हैं कि उनका समाज राष्ट्रभक्ति और समाज सेवा के कार्यों में कभी किसी से पीछे नहीं रहा है। यह बात अलग है कि इस गौरवपूर्ण इतिहास की जानकारी स्वयं अग्रवालों को न हो।

देश की राजनीति और स्वतन्त्रता प्राप्ति आन्दोलन में धन की जो आवश्यकता पड़ी या पड़ती रहती है, उसमें अग्रवाल समाज की ओर से मिलने वाली सहायता का मूल्यांकन स्वयं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी ने किया था। भामाशाह राजा टोडरमल और श्री जमनालाल जी बजाज का नाम इस सन्दर्भ में बहुत आदर के साथ लिया जाता है। लाला लाजपतराय जैसे देशभक्त इस जाति के सपूत थे जिन पर समूचा राष्ट्र गर्व करता है। डा० राम मनोहर लोहिया, श्री श्रीप्रकाश जी, श्री मन्नारायण जी, आचार्य श्री जुगलकिशोरजी, बाबू नवलकिशोर भरतिया, श्री देशबन्धु गुप्ता, लाला हरदेव सहाय, श्री बसंत

लाल जी मुरारका, श्री चन्द्रभानु गुप्त, श्री बनारसी दास गुप्ता तथा श्री मोहनलाल सुखाड़िया आदि अनेक महान देशभक्त और विचारकों के नाम इस जाति के गौरव हैं।

साहित्यिक कोष की श्रीवृद्धि में भी इस समाज के विद्वानों का बड़ा योगदान रहा है। हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र एवं ब्रजभाषा के अनन्य सेवक बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर और राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त इसी जाति के हीरे थे। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल (पुरातत्ववेत्ता और इतिहासकार), श्री मूलचन्द अग्रवाल (हिन्दी पत्रकारिता के जनक), डा० सत्यकेतु विद्यालंकार, डा० परमेश्वरी दास गुप्त, डा० गुलाबराय, श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार (यशस्वी सम्पादक) श्री खेमराज जी (हिन्दी साहित्य के प्रकाशक और मुद्रक) इसी जाति के लाल हैं।

श्रीमती जानकी देवी बजाज, पार्वती देवी डिडवानियां, श्रीमती मदालसा अग्रवाल, श्रीमती रमा जैन और श्रीमती लेखवती जैन जैसी समाज सुधारक बहिनें जिस समाज में जन्मी हों, फिर कौन कह सकता है यह जाति पिछड़ी हुई है।

श्री भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त (सम्पादक), बाबू राधा कृष्ण दास श्री कन्हैयालाल जी पोद्दार, बाबू शिव प्रसाद गुप्त, श्री गोपाल जी नेवटिया, श्री गोकुलचन्द्र जी अग्रवाल, श्री सीताराम जी सेकसरिया, लाला संगमलाल जी (इलाहाबाद), बाबू देवेन्द्र कुमार जैन (आरा) आदि अनेक रत्न हिन्दी साहित्य जगत के हैं।

सर क्लिफर्ड अग्रवाल, सर शादीलालजी, सर गंगारामजी सर सीताराम जी, भारतरत्न डा० भगवानदास जी, राजा भूपेन्द्र

नारायणसिंह बहादुर, लाला श्रीराम जी बैरिस्टर, लाला रामजीदास वैश्य, श्री छानलाल जी भारूखा, श्री जहरीलाल जी मित्तल आदि अनेक अग्रवंश के सितारे न्याय, इंजीनियरिंग और विद्वता के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के रहे हैं।

समाज सुधारक और नैतिक विचारक तथा समाजसेवी भी इस समाज में अग्रणी रहे हैं। श्री लक्ष्मी नारायण जी मरोदिया, सर गंगाराम जी (पंजाब), सेठ गोविन्द लाल जी पिती (बम्बई), सेठ जमना दास अडूकिया (बम्बई), सेठ नारायण लाल जी पित्ती (बम्बई), सेठ आनन्दी लाल पोद्दार (बम्बई), सेठ गौरीशंकर जी गोयनका (बम्बई), श्री बालकृष्ण गोयनका (मद्रास), श्री रामकृष्ण डालमिया, श्री गूजरमल मोदी, साहू शान्तिप्रसाद जैन, श्री कमलापति सिंहानियां लाला श्रीराम और पद्म श्री देवीसहाय जी जिंदल, मास्टर लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, श्री रामेश्वरदास गुप्त, श्री निरंजनलाल गौतम, श्री वशेशरनाथ गोटे वाले, श्री रामकिशन अग्रवाल, श्री प्रह्लादराय गुप्त (सभी दिल्ली निवासी) आदि अनेक प्रतिष्ठित उद्योगपतियों व समाज सेवियों पर समाज गर्व कर सकता है और नवयुवक उनके व्यक्तित्व से प्रेरणा प्राप्त कर अपना मनोबल ऊँचा कर सकते हैं।

❑❑

अग्रवाल रत्नों की कहानी : डाक टिकटों की जुबानी

यहाँ दिये जा रहे परिचय, डाकतार विभाग भारत सरकार द्वारा प्रकाशित विशेष स्मृति टिकिट के साथ ही प्रकाशित फोल्डर (संक्षिप्त परिचय पुस्तिका) से लेकर ज्यों के त्यों प्रकाशित किये गये हैं।

महाराजा अग्रसेन

(२४-९-१९७६)

परम्परा के अनुसार प्राचीन काल में अग्र (आग्रेय) नाम का एक समृद्ध जनपद था जिसकी राजधानी अग्रोदक थी। हिसार जिले (हरयाणा) में अग्रोहा गांव के उत्तर पश्चिम की ओर की एक श्रृंखला पाई गई है। वहीं अग्रोदक का पुराना शहर स्थित था।

प्राचीन भारत के अन्य अनेक जनपदों की भांति आग्रेय भी एक नगर—राज्य था। अनुश्रुति है कि राजा अग्र ही, जो बाद में अग्रसेन के नाम से ख्यात हुए, इस राज्य के संस्थापक थे। एक अनुश्रुति के अनुसार महाराजा अग्रसेन महाभारत-काल के आस-पास हुए थे। साहित्य, दंतकथाओं और पुरातत्व सामग्रियों

अर्थात सिक्कों आदि के प्रमाणों से इस राज्य और इसकी शासन--व्यवस्था का पता चलता है।

महाराजा अग्रसेन मानते थे कि सब मनुष्य समान हैं और सबको समान अवसर मिलना चाहिए। उन्होंने अपने राज्य में समाजवादी ढंग के एक विशेष समाज का विकास किया था, जिसमें नवागन्तुक को या उस व्यक्ति को, जो किसी कारणवश दिवालिया हो गया हो, आग्रेय जनपद का प्रत्येक निवासी एक-एक सिक्का और एक एक ईंट देता था ताकि वह अपना निजी घर बना सके और कोई उद्योग व्यापार शुरू कर सके। यह प्रथा पारस्परिक सहायता के सिद्धांत पर आधारित थी और यही आग्रेय की सर्वतोमुखी प्रगति का कारण था।

डाक तार विभाग महाराजा अग्रसेन के सम्मान में एक विशेष डाक-टिकट निकालते हुए बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

(९-९-१९७६)

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में अनेक मेधावी व्यक्ति हुए हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उनमें से एक हैं। उनका जन्म सितम्बर १८५० में वाराणसी में हुआ था। उन्होंने अपनी अप्रतिम रचनात्मक प्रतिभा के माध्यम से हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास के लिए प्रेरणा और दिशा दी। जनता के मानसिक और बौद्धिक क्षितिज के विस्तार के लिए उस काल में जो भी

प्रयत्न हुए, भारतेन्दु जी ने उनका समर्थन और प्रचार किया। यही नहीं, वे एक बहुत बड़े समाज सुधारक भी थे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, तिरुवनन्तपुरम के केरल वर्मा, केशवचन्द्र सेन और मधुसूदनदत्त जैसे तत्कालीन प्रसिद्ध व्यक्तियों से मित्रता थी। भारतेन्दु ने हिन्दी में उन नयी प्रवृत्तियों का समावेश किया जिनसे बंगाल में पुनर्जागरण का प्रवर्तन हुआ था। वर्तमान से पूर्व की हिन्दी के विकास में, उसे लोकप्रिय बनाने तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं को समृद्ध करने में योगदान इतना ठोस और विशिष्ट है कि उन्हें प्रायः 'आधुनिक हिन्दी' का जनक कहा जाता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी नाटकों के अग्रदूत माने जाते हैं। उन्होंने संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के कई नाटकों के हिन्दी में रूपान्तरण किये। इस प्रकार उन्होंने करीब डेढ़ दर्जन नाटकों की रचना की। उन्होंने प्रारम्भिक हिन्दी पत्रकारिता के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे हिन्दी के पहले उल्लेखनीय निबन्धकार, यात्रा विवरण तथा जीवनी—लेखक थे। उन्होंने पुरावशेषों के इतिहास पर भी कई पुस्तकें लिखी। कविता के क्षेत्र में उन्होंने बहुमूल्य योगदान दिया। उन्होंने सभी प्रकार के छन्दों में लगभग ३०० भक्ति के पद लिखे। वे संभवतः हिन्दी के पहले ऐसे कवि हैं, जिन्होंने खड़ी बोली में अपनी काव्य--कला प्रदर्शित की।

अपने जीवन की संध्या में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कई लेखकों को हिन्दी में उपन्यास लिखने के लिए प्रोत्साहित किया था। भारतीय भाषाओं के साहित्य का इतिहास लिखने वाले प्रसिद्ध विदेशी विद्वान जॉर्ज ग्रियर्सन ने उनके बारे में लिखा था "हरिश्चन्द्र आज के सबसे यशस्वी भारतीय कवि है और

(उन्होंने) देशी भाषाओं के साहित्य की लोकप्रिय बनाने के लिए जितना काम किया है उतना भारत के किसी भी दूसरे जीवित साहित्यकार ने नहीं किया।" ५ जनवरी, १८८५ को ३४ वर्ष की आयु में भारतेन्दु की मृत्यु हो गयी। वे हिन्दी की सबसे बडी हस्तियों में थे। केवल ३४ वर्ष की अल्पायु में भारतेन्दु ने हिन्दी साहित्य में जो अपना इतना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया और साहित्य की इतनी विविध विधाओं में रचनात्मक प्रतिभा की छाप अंकित कर दी, वह वस्तुतः एक बहुत बडी उपलब्धि है।

डाक तार विभाग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सम्मान में एक स्मारक डाक-टिकट निकालते हुए बड़े गर्व का अनुभव करता है।

जमनालाल बजाज

(४-११-७०)

जमनालाल बजाज का जन्म ४ नवम्बर १८८९ को तत्कालीन जयपुर रियासत के काशी-का-बास गाँव में एक निर्धनपरिवार में हुआ था। जब वे पाँच वर्ष के थे तो जयपुर के एक धर्म-परायण और परोपकारी सज्जन श्री बच्छराज बजाज जो वर्धा में बस गये थे, उन्हे अपने पोते के रूप में दत्तक

लिया और अपना उत्तराधिकारी बनाया। स्कूल में जमनालाल जी ने केवल लिखना पढ़ना ही सीखा किन्तु उनमें जो सामान्य बोध और सूझ-बूझ, प्रखर बुद्धि और मेधा थी और सबसे बढकर उनके जीवन-यापन का जो ढंग था, उन सबने उन्हे वास्तव में सुसंस्कृत और बुद्धिमान बनाया।

जब बच्छराजजी का देहान्त हुआ तो वे अपने पीछे अपनी संपूर्ण संपदा, संपत्ति और कारोबार जमनलालजी के लिये छोड गए। छोटी आयु में ही उन्होंने व्यापार के क्षेत्र में अपनी सूझ बूझ, दूरदर्शिता और उद्योग तथा उद्यम से अपने व्यापार का पर्याप्त विस्तार कर लिया और थोड़े ही अर्से में देश के उच्चतम व्यापारिक क्षेत्रों में उनका नाम लिया जाने लगा। उन्होंने बहुत धन कमाया लेकिन अपने व्यापार में भारी घाटे का जोखिम उठाकर भी कभी गलत साधनों का प्रयोग नहीं किया। आज वह देखकर बहुत सन्तोष होता है कि उन्होंने वर्धा और उसके आसपास जिस छोटे से व्यापार की शुरूआत की थी, उसने आज देश के विभिन्न भागों में वृहद् वृहद् बजाज समूह के उद्योगों के रूप में अपना विकास कर लिया है। आज ये उद्योग देश के देहातों और शहरी दोनों ही क्षेत्रों के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

वास्तव में स्वयं को गांधीजी के तईं पूर्णतः समर्पित होने से भी एक दशक पहले बीस वर्ष की आयु से ही वे अपने धन का लोक कल्याण, जन-हित और परोपकार के लिए उदारता पूर्वक प्रयोग करते रहे। इसमें उन्होंने कभी किसी तरह का जाति का धर्म-गत भेदभाव नहीं बरता। जमनालालजी के देहान्त के बाद गांधीजी ने उनके सम्बन्ध में लिखा था: 'जब

कभी मैंने यह लिखा है कि धनिकों को जन-हित के लिए अपने धन का ट्रस्टी बनाना चाहिये, उस समय हमेशा मेरे ध्यान में प्रमुख रूप से जमनालाल जी रहे हैं"।

१९२० से लेकर मृत्यु पर्यन्त वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कोषाध्यक्ष रहे। उन्होंने सार्वजनिक धन का जिस सावधानी से प्रयोग किया, उससे सभी क्षेत्रों में उनकी प्रशंसा हुई। गांधी जी ने जैसे ही १९२१ में असहयोग आन्दोलन शुरू किया, जमनालालजी पूर्णतः उसमें कूद पड़े। उन्होंने रायबहादुर की उपाधि का परित्याग कर दिया।

अप्रैल, १९२३ में 'जलियांवाला बाग दिवस' मनाने के लिये देशव्यापी हड़ताल के सिलसिले अंग्रेजों ने नागपुर सिविल लाईन क्षेत्र में राष्ट्रीय झंडा फहराने पर प्रतिबन्ध लगाया था। उस समय गांधीजी जेल में थे। जमनालालजी ने चुनौती स्वीकार की और सत्याग्रह आन्दोलन शुरू कर दिया,जिसमें उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। १९२४ में उनके जेल से छूटने के बाद उनके गांधी जी के साथ पहले से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध हो गए। उन्होंने गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को आगे बढाने के लिए देश का व्यापक दौरा किया। उन्होंने वर्धा में गांधी सेवा संघ की स्थापना की और इसके रख-रखाव के लिए एक लाख रुपये की निधि भेंट की।

दिसम्बर १९२३ में कांग्रेस के काकीनाडा अधिवेशन में देशभर में खादी कार्य का संगठन और संचालन करने के लिए अखिल भारतीय खद्दर बोर्ड की स्थापना करने का प्रस्ताव पारित किया गया। जमनालालजी को इस बोर्ड का अध्यक्ष बनाया गया। इसके एक वर्ष बाद १९२५ में गांधीजी ने अखिल

भारतीय बुनकर संघ की स्थापना की और जमनालाल जी को इसका कोषाध्यक्ष बनाया गया।

हिन्दी के लिए जमनालाल जी का योगदान कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं था। गांधीजी ने इस सम्बन्ध में लिखा है "मुझे हिन्दी साहित्य सम्मेलन में लाने में उनका प्रमुख भाग था। मात्र उनके ही प्रयत्नों के कारण दक्षिण में हिन्दी प्रचार करने का महान कार्य सम्भव हो सका।"

१९२८ में जब हरिजन उद्धार आन्दोलन अभी अपने शैशवकाल में ही था तो जमनालालजी ने वर्धा में भी लक्ष्मी-नारायण मंदिर में तथाकथित अश्पृश्यों को प्रवेश देने का साहसपूर्ण कदम उठाया। देश भर में यह सबसे पहला मन्दिर था जिसमें हरिजनों ने प्रवेश किया। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अस्पृश्यता निवारण समिति के सचिव भी रहे। १९३० में जब गांधीजी ने नमक सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ किया तो उन्होंने इसमें भी अत्यन्त सक्रिय भाग लिया। इसके परिणामस्वरूप उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और दो वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया।

समाज कल्याण क्षेत्र में उनका अन्य महत्वपूर्ण योगदान भारतीय रियासतों में लोकप्रिय सरकारों की स्थापना, स्त्री शिक्षा और गोरक्षा द्वारा पशु धनकी रक्षा के लिए चलाये गए उनके आन्दोलन है। इनमें से गोसेवा संघ की स्थापना उनकी अन्तिम देन थी।

जमनालाल जी का देहावसान ११ फरवरी, १९४२ को हुआ। उनके अचानक और असामायिक निधन से देश भर में उदासी छा गई।

भारतीय डाक-तार विभाग भारतीय संस्कृति और परम्परा में सर्वोत्तम गुणों के प्रतिरूप इस सच्चे देशभक्त और देश के महान् सपूत की स्मृति में विशेष स्मारक डाक-टिकिट निकाल कर गर्व का अनुभव कर रहे हैं।

डॉक्टर भगवान दास

१२-१-१८६९

डा० भगवानदास का जन्म दि० १२ जनवरी १८६९ को वाराणसी में हुआ था। अपने प्रतिभाशाली विद्यार्थी जीवन के बाद उन्होंने डिप्टी कलेक्टर के रूप में सरकारी सेवा में प्रवेश किया। किन्तु वे इतने महान् थे कि इस अपेक्षाकृत छोटे से सरकारी पद पर लम्बे अर्से तक बने नहीं रह सकते थे। ज्ञान, विशेष रूप से धर्म एवं दर्शन में उनकी गहरी रुचि थी। एक समय था जब वे डा० एनी बेसेंट के प्रभाव में आए और उनके सहयोग से सेन्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना की। कालान्तर में

यह संस्था बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय के रूप में विकसित हुई। तत्पश्चात् उन्होंने एक राष्ट्रीय विश्व विद्यालय के रूप में काशी विद्यापीठ की स्थापना की और कई बर्षों तक इसके प्रधान रहे

वे न सिर्फ दार्शनिक, वरन् एक प्रमुख जन सेवक भी थे। अविभाज्य भारत की केन्द्रीय विधान सभा के वे एक सम्मानित सदस्य थे और उन्होंने अनेक सामाजिक और राजनैतिक सम्मेलनों की अध्यक्षता की थी। वे हिन्दुस्तानी कल्चर सोसाइटी से सम्बद्ध रहे और साम्प्रदायिक दङ्गों पर गठित राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष भी मनोनीत हुए। राष्ट्रीय स्वाधीनता सेनानी के रूप में उन्होंने अपने को गिरफ्तारी के लिए भी पेश किया।

संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् के रूप में उन्होंने बड़ी संख्या में हिन्दी शब्दों का निर्माण किया। उन्होंने लगभग ३० पुस्तकें लिखीं, जिनमें से कई संस्कृत और हिन्दी में है। उनमें से अधिकांश दर्शन एवं प्राचीन भारतीय शास्त्र सम्बन्धी है। उन्होंने अन्य धर्मों के साथ-साथ मनोविज्ञान और समाजवाद जैसे विषयों पर पुस्तकें भी लिखी। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व बहुमुखी था और उनकी उपलब्धियाँ अनेक दिशाओं में हैं। उन्हें 'भारत रत्न' की उच्चतम राष्ट्रीय उपाधि देकर देश ने उनके महत्व को स्वीकार किया है। १८ सितम्बर, १९५८ को दीर्घ और यशस्वी जीवन के पश्चात् वे परलोक सिधारे।

डा० भगवानदास का स्मरण मुख्यतः एक विचारक के रूप में किया जायेगा। उन्होंने पश्चिम को पूर्व के और अधिक निकट लाने का प्रयास किया और पुरातन को नूतन के संदर्भ में बुद्धिगम्य बनाया। उन्होंने लिखा है—"नये सम्पन्न जीवन

के लिए मानव समुदायों के भिन्न-भिन्न विचारों, आदर्शों और मार्गों में समन्वय की आवश्यकता है। आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार की वस्तुओं का ईमानदारी से किया गया आदान-प्रदान दोनों ही पक्षों के लिए लाभदायक है।" समन्वय में उनका बहुत बड़ा विश्वास था। उन्होंने आगे लिखा है—"हमारा मार्गदर्शक सिद्धान्त होना चाहिए—मूलभूत तत्वों, सिद्धान्तों और बड़ी बातों में एकता, अनावश्यक बातों में स्वतन्त्रता, पर हर हालत में उदारता।"

भारत का यह महान् सपूत आज हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु उसके द्वारा प्रतिपादित विचारधारा आज भी जीवित हैं। भारतीय डाक-तार विभाग इस महान् दार्शनिक की स्मृति में उनकी जन्म-शताब्दी के अवसर पर एक विशेष डाक-टिकट जारी करके प्रसन्नता का अनुभव करता है।

लाला लाजपत राय

(28-1-1965)

Lala Lajpat Rai occupies a pre-eminent position in the ranks of valiant fighters for India's independence. He was born on the 28th January 1865 in a small village called Dhudike in theFerozepur District of the Punjab. After a distinguishedacademic caree he qualified as a lawyer and srarted practising in Hissar in 1883. He soon became the foremost lawyer in the district.

His spirit rebelled against the foreign rule in India and he devoted himself throughout his life to the

struggle for freedom. He joined the Indian National Congress in 1888 and was sent to England by the Congress in 1905, to canvass British public in favour of responsible government for Indians. On his return to India he continued his political agitation which resulted in his exlie for a period of six months to Burma.

These repressive measures did not break him but steeled his determination to fight for the freedom of his countrymen. He visited England again in 1914 as a member of the Congress delegation and later spent a few years in the United States of America where he carried on propaganda in favour of responsible government for India.

His turbulent spirit could not submit itself to the disciplines of a single party and during his life-time he was to associate himself with different politcal parties. However the ruling passion of his life was the political emancipation of his people. He was a man of utter sincerity and courageous determination. His spirit revolted againts injustice in any shape or form and he was always in the forefront. In 1928 the Simon Commission visited India in connection with some proposals for poittical reform. Lala Lajpat Rai led the agitation against the Commission in the Punjab. It was while he was leading a procession in Lahore to protest against the Commission's visit to India that he was felled by blows from a police baton on 30th October 1928. He succmbed to his injuries on the 17th November 1928.

The P. and T. Department is proud to issue a cemmemoratire stamp on the 28th January 1965, the birth centenary of Lala Lajpat Rai valiant fighter for freedom, social reformer and humanitarian. □ □

ध्वजगान

झंडा लहर लहर लहराये
अग्रवंश की कीर्ति सुनाये
केसरिया रङ्ग बहुत सुहाये।
त्याग भाव का पाठ पढ़ाये ॥
सहानुभूति और प्रेम त्याग को।
हम सब जीवन में अपनायें ॥१॥
अट्ठारह किरणों का गोला।
गोभी की बोली यह बोला ॥
राज व्यवस्था को बतलाकर।
अग्रसेन की याद दिलाये ॥२॥
एक रुपये संग ईंट जुड़ी है,
इसमें समता बहुत बड़ी है ॥
समाजवाद की एक कड़ी यह।
अग्रोहा की याद दिलाये ॥३॥
ऊपर नीचे कूल बने हैं।
मिले बीच अनुकूल घने हैं ॥
ऊँच-नीच का भेद मिटाकार।
समता सह्य जीवन में लाये ॥४॥
धन-अर्जन व्यापार हमारा।
दान-धर्म अपने को प्यारा ॥
असहायों का बनके सहारा,
देश प्रेम की ज्योति जगाये ॥५॥

झंडा गान के बाद महाराज अग्रसेन जी का तीन बार जयघोष करें।

अग्रसेन जयंती मनाने का विधान

प्रत्येक अग्रवाल बन्धु आसोज शुदी १ को (प्रतिवर्ष) महाराज अग्रसेन जयन्ती अपने नगर, कस्बे या ग्राम में मनाये, यह आज्ञा गुरू ब्रह्मानन्द जी ने संवत १९६४ विक्रमी में दी थी। आयोजन की रूपरेखा इस प्रकार है—

१—प्रत्येक स्थान पर अग्रवाल सभा का गठन कर जयंती मनाई जानी चाहिये।

२—जयन्ती स्थल पर सफाई, बिछावट, धूपबत्ती आदि की व्यवस्था कर महाराज अग्रसेन जी तथा महालक्ष्मी जी के चित्र प्रतिष्ठापित किए जांय।

३—कार्यक्रम के आरम्भ में सभी बन्धु चित्रों पर फूल-माला, चन्दन, धूपबत्ती अर्पित करें। आरती उतारें। हवन भी किया जा सकता है।

४—आयोजन स्थल पर जातीय ध्वज (मुख पृष्ठ पर छपा है) फहराना चाहिये।

५—ध्वज सभा के अध्यक्ष अथवा कोई मान्य व्यक्ति फहरायें और इसके बाद ध्वज गान बच्चों से करायें और साथ में सभी लोग बोलें। तत्पश्चात् महाराज अग्रसेन तथा जातीय रत्नों का जयघोष करें।

६ - ध्वजा रोहण के बाद सभा में समाज की समस्याओं, संगठन आदि विषयों की चर्चा करें। बच्चों के सांस्कृतिक

कार्यक्रम भी हो सकते हैं। अन्त में प्रसाद वितरण तथा जातीय साहित्य वितरण करना चाहिये।

७—इसी दिन शाम को जुलूस महाराज अग्रसेन जी के चित्र के साथ निकालना चाहिये। बाद में सभा में महाराज अग्रसेन जी के जीवन आदर्शों और अग्रोहा पुण्यभूमि की चर्चा करनी चाहिए। विभिन्न कार्यक्रम सप्ताह भर चलाये जा सकते हैं। इसका उद्देश्य समाज को संगठित तथा जागृत करना होना चाहिये।

८—जयन्ती के अवसर पर वृद्धजनों को सम्मानित करने, असहाय विधवाओं को सिलाई मशीन देने, प्रतिभाशाली छात्र छात्राओं को पुरस्कृत करने तथा समाज के बन्धुओं को उनकी विशिष्ट सेवाओं तथा आदर्श चरित्र के लिए सम्मानित किया जाना चाहिए। इससे समाज में आपसी सहयोग, प्रेम और संगठन का उद्देश्य पूरा होता है। सम्पूर्ण वैश्य समाज को जयन्ती मनानी चाहिये। महाराजा अग्रसेन जी ने वैश्यों का संगठन किया था अतः वैश्य संगठन पर बल दिया जाय। इस अवसर पर हम एक दूसरे की बुराई करने की अपेक्षा प्रशंसा करने का संकल्प करें।

□ □

"व्यक्तियों की तरह हर जाति की एक विशेष वृत्ति होती है, जो कि उसके राष्ट्रीय जीवन की रीढ़, उसकी आधारशिला और मूलाधार होती है।"

—स्वामी विवेकानन्द

प्रकाशकः—

महाराजा अग्रसेन प्रकाशन समिति, मथुरा

यमुना प्रिन्टिंग प्रेस, मथुरा. २८१००१